लेखक परिचय

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक सुदूर गाँव में जन्मे डा0 त्रियुगी प्रसाद ने 1954 में जिला स्कूल मजफ्फरपुर से माध्यमक शिक्षा, 1956 में सायंस कॉलेज पटना से इंटरमीडिएट, 1960 में पटना विश्वविद्यालय अंतर्गत तत्कालीन बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग से सिविल इंजीनियरिंग में स्नातक तथा 1961 में तत्कालीन रूड़की विश्वविद्यालय से 'डैम डिजाइन, इरिगेशन इंजीनियरिंग और हाइड्रॉलिक्स' में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर तत्कालीन बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पटना विश्वविद्यालय में व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर जल विज्ञान एवं जल संसाधन विषय में इलिन्वॉय विश्वविद्यालय (अमेरिका) से चार वर्षों की डॉक्टरेट की उच्च शिक्षा प्राप्त कर 1968 के अन्त में भारत लौटकर जल संसाधन और संबद्ध विषयों में अध्यापन और शोध के कार्य में जुट गए। उन्होंने 1971 में मॉस्को विश्वविद्यालय, 1976 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय तथा 1984 में अमेरिका के Bureau of Reclamation में जल संसाधन के विभिन्न पहलुओं पर विशिष्ट ट्रेनिंग प्राप्त की। जल संसाधन से सम्बंधित विश्व के कई देशों की प्रमुख संस्थाओं, संस्थानों और योजनाओं का भ्रमण कर विशेष जानकारी और अनुभव प्राप्त किया। उन्होंने जल संसाधन के विभिन्न आयामों पर आयोजित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अनेक गोष्ठियों में भाग लेकर अनेकों शोध पत्र प्रस्तुत किए और कई ऐसी गोष्ठियों को पटना में भी आयोजित किया। सौ से अधिक उनके शोध पत्र और विशिष्ट आलेख राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विशिष्ठ पत्रिकाओं और पुस्तकों में प्रकाशित हुए हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्वी क्षेत्र के जल संसाधन की विकट समस्याएं और अपार संभावनाएं उनके शोध और अध्ययन के केन्द्र बिन्दु रहे हैं। इन समस्याओं के समाधान तथा इन संभावनाओं के क्रियान्वयन में सही ज्ञान का प्रयोग हो सके, इसे सुसाध्य और सुनिश्चित करने के लिए देश और विदेशों की सहायता से उन्होंने पटना विश्वविद्यालय के अधीन जल संसाधन अध्ययन केन्द्र की स्थापना की और अपनी सेवा अवधि के अन्त तक वे

इसके निदेशक रहे। 1999 के अक्टूबर में सेवानिवृत होकर संप्रति वे जल संसाघन के समग्र विकास से सम्बंघित एक अलाभकर संस्था के कार्यकारी अध्यक्ष हैं।

डा0 प्रसाद छात्र जीवन से ही देश की दशा और दिशा में गहरी रूचि लेते रहे हैं। पटना विश्वविद्यालय के प्रथम छात्र यूनियन में बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग के प्रतिनिधि निर्वाचित हुए थे। इलिन्वॉय विश्वविद्यालय (अमेरिका) के भारतीय छात्र संघ के अघ्यक्ष निर्वाचित हुए, जिस अवघि में उन्होंने "Does India Have a Future?" पर एक पैनल संगोष्ठी आयोजित की। इसमें उस विश्वविद्यालय के भारत और दक्षिण एशिया की समस्याओं में विशेष रूचि रखने वाले कई गण्यमान अमेरिकी प्राघ्यापकों ने भाग लिया। वहाँ उन्हें भारत और इसकी समस्याओं को देखने-समझने का नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। इंजीनियरिंग की कठिन पढाई और शोध में व्यस्तता के बीच उन्होंने 'Corruption in Public Life in India' और 'India's Brain Drain' पर आलेख लिखे, जिनमें एक प्रकाशित भी हुआ और प्रशस्ति भी मिली। अपने ज्ञान से देश को लाभान्वित करने का जज्बा लिए पढ़ाई की समाप्ति के बाद स्वदेश लौटने के कुछ ही महीनों में उन्होंने पटना के तत्कालीन प्रमुख अंग्रेजी समाचार पत्र 'The Indian Nation' के लिए एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था "India under Shackles"। 2004 के भारतीय निर्वाचन के बाद उन्होंने एक विस्तृत प्रलेख (document) तैयार किया जिसका शीर्षक है "India's Crying Need for Change of the System of Governance - Call for Action"। प्रस्तुत पुस्तिका इसी प्रलेख पर आधारित है।

प्राक्कथन

छात्र जीवन से ही पठन-पाठन के अलावा छात्र जीवन से संबंधित अन्य गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी और नेतृत्व में मुझे गहरी रूचि रही है। मेरी यह रूचि सदा ही तत्कालीन गतिविधियों को अधिक क्रियाशील, पहले से अधिक दक्ष और स्थितियों को बेहतर बनाने की ओर प्रवृत्त रही है। अवांछित स्थितियों से ताल-मेल बिठाना या उनसे समझौता करने की कभी मेरी फितरत नहीं रही है। जैसे-जैसे मैं छात्र जीवन और शैक्षणिक क्षेत्र में आगे बढ़ता गया, मेरी रूचि का दायरा भी बढ़ता गया। और जब मैं पहली बार 1968 में देश से बाहर चार वर्षों के लिए उच्च शिक्षा और शोध के लिए अमेरिका गया, उस प्रवास के दौरान मुझे अपने देश और इसकी समस्याओं को देखने-समझने का नया नजरिया मिला। उसके बाद अनेकों बार विभिन्न अवधियों के लिए मुझे अमेरिका और अन्य देशों में जाने का अवसर मिला, जिससे मेरा यह नजरिया और भी परिवर्द्धित और परिष्कृत हुआ है। विशेषतया अमेरिका के विभिन्न प्रवासों में अपने काम के अलावा देश की विकट से विकटतर होती समस्याओं के समाधान के प्रसंग में अमेरिकी शासन एवं अन्य तंत्रों (systems) का चैतन्यपूर्ण ढंग से जानने एवं अनुभव करने का मैंने प्रयास किया। इस ज्ञान और अनुभव के आधार पर मेरी यह अवधारणा पुष्ट होती गयी कि महात्मा गाँधी के जीवन्त विचार हमारे देश की समस्याओं को समझने और समाधान करने में सवर्था प्रासंगिक, प्रभावी और व्यावहारिक हैं। मैं ने अपने इन अनुभवों और विचारों को 2005 के मार्च महीने में (2004 के राष्ट्रीय निर्वाचन के बाद) एक विस्तृत प्रलेख में लिपिबद्ध किया। इसी प्रलेख पर आधारित इन विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए प्रस्तुत पुस्तिका मेरा एक प्रयास है। यदि यह संदेश जनमानस को धनात्मक रूप से कुछ प्रभावित और उद्वेलित कर सका तो मैं इस प्रयास को ही नहीं, अपने 40 वर्षों की विचार-यात्रा को एक सार्थक पड़ाव पर लाने में सफल समझूँगा।

पुपरी (जिला - सीतामढ़ी, बिहार) त्रियुगी प्रसाद
2 अक्टूबर 2008

देश की दुर्दशा : चित्रण, विश्लेषण, निदान, भविष्यदृष्टि एवं मार्गदर्शिका

अभी हम लोगों ने देश की आजादी का 62वां सालगिरह मनाया है। यदि हम इन 61 सालों में देश की यात्रा का सिंहालोकन करें और आज जिस मुकाम पर हम पहुँचे हैं उस पर गौर करें तो हमें धोर निराशा और हतोत्साह होगा। ऐसा नहीं है कि हमारी यह दुर्दशा किसी स्थिति- विशेष या व्यक्ति-विशेष से हुई है। इन सालों में हमारा पतन कमोबेश क्रमिक हुआ है, सिर्फ पतन की गति बढ़ती गई है। और यदि यह क्रम बना रहा तो पता नही आने वाले वर्षों और दशकों में हम पतन और दुर्दशा के किस गर्त में पहुँचेंगे। मोटे तौर पर इस दुर्दशा का चित्रण कुछ इस प्रकार है।

दुर्दशा का चित्रण

सबसे पहले तो हमारी नज़र राजनीति पर जाती है। स्वतंत्रता आंदोलन और उसके शीघ्र बाद की राजनीति और आज की राजनीति - तिलक, गाँधी, नेहरू, डा0 राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण सरीखे राजनीतिज्ञों के नैतिक स्तर और आज के तथाकथित राजनीतिज्ञों के नैतिक स्तर में आसमान और जमीन का नहीं, बल्कि आसमान और गहरी से गहरी खाई का अंतर है। राजनीति का इतना बड़ा पतन और ह्रास विश्व में संभवत: अद्वितीय है। क्रमिक रूप से राजनीति में अवांछनीय तत्त्वों का प्रवेश, राजनीति का अपराधीकरण और राजनीति में पैसों का जो नंगा नाच हो रहा है वह किसी भी सभ्य देश के लिए धोर शर्म की बात है।

इन वर्षों में आर्थिक क्षेत्र में जो परिवर्त्तन हुए हैं, वह कतई उत्साहवर्द्धक नहीं है। आर्थिक विकास का जो सरकारी आंकड़ा दिया जाता है वह वास्तव में अत्यंत भ्रामक है। देश में जितनी अमीरी बढ़ी है, जितने लोग ज्यादा अमीर हुए हैं, उससे लाखों गुणा ज्यादा लोग गरीब हुए हैं, अमीरी और गरीबी की खाई बढ़ी है और रफ्तार से बढ़ती जा रही है, देश में क्षेत्रीय असमानता बढ़ी है और बढ़ती जा रही है, गाँवों और शहरों में असमानता बढ़ी है। विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़े जहाँ कुछ क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं, उससे कहीं ज्यादा कृषि एवं अन्य पारम्परिक क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ी है। कृषकों द्वारा आत्महत्या इन्हीं वर्षों की उभरी कहानी है। देश में हरित क्रांति की वजह से कृषि में जो विकास हुआ था और अन्न में जो

अत्मनिर्भरता आई थी, उसे हम लोगों ने पिछले दो दशकों में खो दिया है और देश फिर अन्न और अन्य आवश्यक कृषि उत्पादों का आयात करने को मजबूर है।

इस संदर्भ में अपने ही राज्य बिहार का उदाहरण शिक्षाप्रद होगा। इन वर्षों में बिहार वास्तविक अर्थों में पहले से अधिक विपन्न हुआ है। सापेक्ष रूप से भारत के अन्य विकसित राज्यों का बिहार उपनिवेश बन गया है, जो इन विकसित राज्यों में अपना सस्ता श्रम देता है और वहाँ की उत्पादित वस्तुओं का उपभोक्ता हो गया है। प्राकृतिक संसाधनों, यथा उपजाऊ भूमि, प्रचुर जल, सालों भर कृषि योग्य जलवायु और कृषि निपुण मानव शक्ति की दृष्टि से जो देश का सबसे समृद्ध राज्य है, वही आज देश ही नहीं, विश्व के निर्धनतम क्षेत्रों में शुमार है।

सामाजिक परिवेश में भी इन वर्षों में काफी गिरावट आई है। साम्प्रदायिकता और जातीयता की भवनाओं को बार बार उभारा गया है और सामाजिक समरसता में चिंतनीय ह्रास हुआ है। समाज में अपराधीकरण, अशांति और असुरक्षा में इजाफा ही हुआ है। प्रशासन में भ्रष्टाचार बेकदर बढ़ा है, प्रशासनिक दक्षता में कोई सुधार नहीं हुआ हे और अपने को प्रजातंत्र कहने वाले देश में प्रशासन तंत्र पर जनता की कोई पकड़ नहीं है। जनता के सेवक (Public Servant) कहे जाने पदाधिकारियों में ऐसा नजरिया और व्यवहार तो कोसों दूर है। जन जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले क्षेत्रों, यथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य में पहली बात तो जनता की कोई भागीदारी नहीं है। दूसरे, जनता के कर से सरकार द्वारा संचालित इनसे सम्बद्ध संस्थानों में, जैसे स्कूल, कॉलेज और अस्पताल में, निम्न स्तर की व्यवस्था व्याप्त होने से जितना निजीकरण और बाजारवाद का उदय और प्रश्रय हुआ है, वह तथाकथित पूँजीवादी देशों को भी शिकस्त दे रहा है और आम जनता इनसे बुरी तरह त्रस्त है।

विश्लेषण

देश की दुर्दशा का जो ऊपर संक्षिप्त चित्रण किया गया है उसका असर विभिन्न क्षेत्रों में हमारे राष्ट्रीय प्रदर्शन और उपलब्धियों में स्पष्टत: परिलक्षित है। नोबेल पुरस्कार और ऑलम्पिक जैसे अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं में हजारों साल की अनवरत सभ्यता और संस्कृति के

वारिस और जनसंख्या में चीन के बाद दूसरे देश भारत की जो स्थिति है वह एक तरह से शर्मनाक है। प्रतिभाओं का देश कहे जाने वाले इस देश की जो प्रतिभाएं प्रस्फुटित और मान्य भी हुई हैं, वे देश के बाहर ही जाकर हुई हैं।

आज़ादी के बाद हुई देश की इस दुर्दशा का विश्लेषण संयत रूप से और सावधानी पूर्वक करना होगा। जैसे सात अंधे व्यक्तियों ने विशालकाय हाथी को अलग-अलग रूप से परिभाषित किया, किसी ने सूँढ़, किसी ने पूँछ, किसी ने पैर, किसी ने दाँत, जिसने भी जिस अंग को छुआ, उसी आधार पर हाथी को परिभाषित कर दिया, फलतः हर परिभाषा अपूर्ण और भ्रामक रही। उसी तरह देश की दुर्दशा इतनी बहुआयामी और व्यापक है कि खतरा है कि हम उसके किसी आयाम विशेष को ही लेकर समस्या को विश्लेषित करें और उसके निदान का रास्ता बताएं। चूँकि यह विश्लेषण हमारी दुर्दशा की व्यापक एवं समन्वित दृष्टि पर आधारित नहीं है, यह रास्ता हमें अभीक्षित गन्तव्य पर न ले जाकर और दुरूह समस्याओं में उलझा दे सकता है, जैसा अब तक होता आया है।

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम तत्कालीन भारत की दुर्दशा को व्यापक रूप से देखा, परखा और अपने अनुभवों एवं सूक्ष्म दृष्टि के आधार पर इस नतीजे पर पहुँचे कि भारत में अंग्रेजों द्वारा स्थापित शासन तंत्र (system of governance) के द्वारा ही भारत का आर्थिक, नैतिक और शैक्षणिक शोषण कुशलता पूर्वक किया जा रहा है जब तक इस तंत्र का उन्मूलन नहीं किया जायेगा, भारत की दरिद्रता, नैतिक पतन और अज्ञानता को दूर नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने इस तंत्र का उन्मूलन ही स्वतंत्रता आंदोलन का मुख्य उद्देश्य रखा और इसी आधार पर उन्होंने देश की जनता को इस आंदोलन के साथ जोड़ा। महात्मा गाँधी के पहले कांग्रेस पार्टी और तत्कालीन नेताओं का ज्यादा जोर इस पर था कि शासन तंत्र में भारतीयों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हो। गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई दिशा दी, इसे नैतिक आधार प्रदान किया और अवाम को इसके साथ जोड़ा। चूँकि अंग्रेज सात समुंदर पार से यहाँ बसने नहीं आए थे, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की समृद्धि के लिए

भारत को अपने एक उपनिवेश के रूप में इसके प्राकृतिक और मानव संसाधनों का शोषण करने आए थे, जिसे वे उसके लिये उपयुक्त शासन तंत्र के माध्यम से करीब डेढ़ सौ वर्षों से कुशलता पूर्वक करते आ रहे थे, इसलिए उस तंत्र के उन्मूलन के लिए अंग्रेजों का भारत छोड़ना आवश्यक था। 'अंगेजों भारत छोड़ो' का नारा इसी संदर्भ में दिया गया था। गाँधी जी हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि हमें अंग्रेजों से कोई दुश्मनी नहीं हैं, हमें उस तंत्र को हटाना है जो हमें दरिद्रता, अज्ञानता और नैतिक पतन की ओर ले जा रहा है। 1947 में जब भारत को आज़ादी मिली तो गाँधी जी उस जश्न और उत्सव में शरीक नहीं थे जिसे दिल्ली और पूरा देश मना रहा था। गाँधी के विचार में 1947 की आजादी तो सिर्फ एक राजनैतिक आजादी थी, जिसके आधार पर हम उस शोषण तंत्र को हटाकर एक ऐसी व्यवस्था ला सके जिसके माध्यम से भारत का आर्थिक, सामाजिक और नैतिक विकास सुनिश्चित हो। संविधान सभा के माध्यम से हमें ऐसी व्यवस्था लाने का अवसर मिला। 1948 के नवम्बर में जो संविधान पारित हुआ जिसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया, उसमें घोषणा तो की गयी कि भारत एक प्रजातांत्रिक, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष गणतंत्र होगा, जिसमें हमारे उद्देश्यों और आकांक्षाओं की पूर्त्ति के लिए निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles) प्रतिपादित किए गये, लेकिन शासन तंत्र मूलत: वही रखा गया जो औपनिवेशिक भारत में था। यह संविधान 75 प्रतिशत Govt. of India Act, 1935 पर आधारित है। याद रहे कि Indian Independence Act 1947, जिसके द्वारा भारत सरकार पर ब्रिटिश संसद का आधिपत्य समाप्त किया गया, उसमें यह व्यवस्था दी गयी थी कि जब तक भारत अपना संविधान नहीं बनाता और लागू करता, तब तक भारत Govt of India Act, 1935 के प्रावधानों से शासित होगा। मूलत: इसी Act पर आधारित हमारे संविधान ने औपनिवेशिक भारत की शासन व्यवस्था को आजाद भारत के लिए भी बरकरार रखा, जो न संविधान में धोषित भारत के स्वरूप के अनुरूप था और न जो हमारे संविधान में वर्णित निर्देशक सिद्धांतों को अमलीजामा पहनाने में सक्षम था। अत: जिस शासन तंत्र से आजाद होने का हमारी आज़ादी की लड़ाई का मुख्य उद्देश्य था उससे न हम 15 अगस्त 1947 में आजाद हो पाये और न ही 26 जनवरी 1950 को हम उसे सुनिश्चित

कर पाए। स्मरण रहे कि 1947 में देश में साम्प्रदायिक दंगों से मर्माहत और 1948 के जनवरी में काल-कवलित हुए महात्मा गाँधी का हमारे संविधान की संरचना पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं था। और यहीं से शुरू होता है सत्ता की राजनीति, राजनीति का अधोपतन, घोटालों और भ्रष्टाचार का बोलबाला, सामाजिक अशांति और असुरक्षा, insurgency का उदय एवं प्रसार, घोर आर्थिक एवं क्षेत्रीय विषमता और देश की दुर्दशा की दास्तान। और हम लाख कोशिश करें, जब तक यह शासन तंत्र रहेगा यह दास्तान किसी लोकप्रिय टीवी सीरियल की तरह खत्म नहीं होगी, बढ़ती ही जायेगी और दुस्तर से दुस्तर होती जायेगी।

निदान

देश की दुर्दशा के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार इस शासन व्यवस्था को मौलिक रूप से बदलना नितान्त अनिवार्य है। इसके लिए यह आवश्यक है कि पहले परिवर्त्तित शासन व्यवस्था की रूपरेखा सुनिश्चित की जाय। इस रूप रेखा को महात्मा गाँधी ने अपने कई लेखों और भाषणों में इंगित किया था। अपने जीवन काल में इस रूप रेखा के अनुरूप शासन तंत्र को परिवर्त्तित करने के लिए वह सक्रिय कदम नहीं उठा सके क्योंकि उसके लिए भारत की राजनैतिक आजादी पहली अनिवार्य शर्त थी और इसकी प्राप्ति के पश्चात् साम्प्रदायिक दंगों से मर्माहत और असमय काल कवलित होने से शासन तंत्र के अभीक्षित परिवर्त्तन के लिए वह सक्रिय मार्गदर्शन नहीं कर पाए। एक तो गाँधीजी के अनुयायी शीर्ष राजनेता शासन व्यवस्था की गाँधी जी की परिकल्पना के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध नहीं थे। दूसरे, तत्कालीन भारत के कई प्रभावकारी वर्गों का प्रचलित शासन व्यवस्था को कार्यकारी रूप से अक्षुण्ण रखने में निहित स्वार्थ था। फलस्वरूप हमारे संविधान की संरचना ऐसी रही कि ऊपरी तौर पर तो वह एक प्रजातांत्रिक, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष संप्रभुता संपन्न गणराज्य का मसविदा हो लेकिन इस संकल्पना को मूर्त्तरूप देने के लिए उसी शासन तंत्र को बरकरार रखा गया जो एक औपनिवेशिक देश को शासित और शोषित करने के लिए प्रकल्पित था। उदाहरण के रूप में मोटे तौर पर इस शासन व्यवस्था के स्वरूप का आकलन निम्नलिखित है। जनता के मत से

राज्य सरकार बनती है, लेकिन एक गांव या एक शहर की जनता अपने ही गाँव या शहर की विधि व्यवस्था कायम रखने में या अपने बच्चों की गुणवत्तापूर्ण स्कूली शिक्षा सुनिश्चित करने में अपने को अत्यन्त निर्बल और असहाय पाता है और बाजार प्रेरित निजी संस्थाओं में अपने बच्चे-बच्चियों को भेजने को मजबूर है। जो संविधान समाजवादी व्यस्था की घोषणा करता है उस देश में संविधानोत्तर काल में ही अमीर और गरीब के बीच की खाई काफी चौड़ी हुई है। जिस देश का संविधान धर्म-निरपेक्षता आधारित है, उसमें सत्ता के लिए बहुसंख्यकों की धार्मिक भावना को उभारना और अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण दोनों बदस्तूर जारी है। जहाँ गणतंत्र (republic) में संप्रभुता जनता में निहित होती है और सरकारी पदाधिकारी जन सेवक (public servant) होते हैं, उस देश में जन सेवक और जनता का सम्बंघ इसके अत्यंत विपरीत है। संविधान की संकल्पनाओं और देश की वास्तविकताओं में जो इतना विरोधाभास है वह एक सर्वथा अनुपयुक्त शासन तंत्र के कारण ही है। देश की दुर्दशा के निवारण में इस शासन तंत्र को मौलिक रूप से बदलना अनिवार्य शर्त है। इसके बिना देश के सर्वतोमुखी विकास तो क्या इसकी अधोगति की रफ्तार को भी रोकना या कम करना संभव नहीं । आखिर, शासन तंत्र में यही परिवर्त्तन लाना तो महात्मा गाँधी द्वारा प्रेरित और मार्गदर्शित स्वतंत्रता आंदोलन का मौलिक उद्देश्य था। स्वतंत्र भारत में औपनिवेशिक भारत के शासन तंत्र को मूल रूप से अपनाकर एक तरह से स्वतंत्रता आंदोलन के प्रेरक महात्मा गांधी और उनके आह्वान पर लाख़ों की संख्या में उसमें शामिल हाने वाले स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति विश्वासघात है।

गाँधी जी के विचारों के अनुरूप उस परिवर्त्तित शासन व्यवस्था की रूपरेखा कुछ इस प्रकार की होगी। इसमें सत्ता का स्वरूप ऐसा होगा जो जन सेवा का ही माध्यम होगा और इसमें सत्ता का वैयक्तिक या वर्गीय स्वार्थ के लिए दुरूपयोग की बहुत ही कम गुंजाइश होगी। इसी विचार से महात्मा गाँधी ने 29 जनवरी 1948 को अपने जीवन के अंतिम लेख और पत्र में तत्कालीन कांग्रेस पार्टी को सलाह दी थी कि तब के अपने स्वरूप को विघटित कर वह अपने को एक सेवा-केंद्रित संस्था के रूप में परिणत करे, जिसका नाम भी उन्होंने सुझाया था

'लोक सेवक संध'। उनका स्पष्ट मत था कि कांग्रेस का तत्कालीन स्वरूप राजनीतिक आजादी पाने के लिए ही ठीक था। लेकिन जो हमें अब सदियों से शोषित और फलस्वरूप विकृत समाज में समाजिक, आर्थिक और नैतिक रूप से देश को आजाद करना है उसके लिये स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रणी पार्टी को स्वरूप से बदलना होग। देश की दुर्दशा में बहुत बड़ा योगदान सत्ता के दुरूपयोग का है, जिसकी अभी के शासन तंत्र में अच्छी खासी गुंजाइश है। वस्तुत: इसी गुंजाइश के चलते बहुत से अवांक्षित तत्त्व राजनीति, जो सत्ता में आने का रास्ता है, में प्रवेश करते है। अच्छे लोग भी सत्ता में आकर इस गुंजाइश से धीरे-धीरे प्रलोभित (seduced) हो कर उसका दुरूपयोग करने लगते हैं। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में, जिसमें सत्ता एक मात्र सेवा का ही माध्यम होगी, सत्ता का दुरूपयोग नगण्य हो जाएगा और जो ऐसा करेंगे भी, वह व्यवस्था में निहित दोष के चलते नहीं, बल्कि अपनी वैयक्तिक अनैतिकता के चलते ही करेंगे और उस स्थिति में कानून की परिधि में आसानी से आ जाएंगे । दूसरा, परिवर्त्तित शासन तंत्र बहुत हद तक विकेन्द्रित होगा। शासन का प्रथम स्तर होगा प्रत्येक गाँव या प्रत्येक शहर। गाँधी जी स्वतंत्र भारत की परिकल्पना ग्राम स्वराज्य से करते थे और शासन तंत्र की मूल इकाई ग्राम गणतंत्र (Village Republic) मानते थे। परिवर्त्तित शासन तंत्र में ग्राम सरकार (Village Government) या नगर सरकार (Town/City Government) सरकार की प्रथम (Primary) इकाई होगी। इसमें उस गाँव या नगर के बालिग वासियों द्वारा निर्वाचित सरकार होगी और चूँकि यह संप्रभुता सम्पन्न जनता के द्वारा निर्वाचित सरकार है, यह किसी और सरकार, राज्य या केन्द्रीय, के अधीन नहीं होगी। यह स्वयं जनता के जीवन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित, यथा स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल आपूर्त्ति, पर्यावरणीय स्वच्छता, सड़क, विधि-व्यवस्था आदि क्षेत्रों में वित्तीय एवं प्रशासनिक रूप में स्वायत्त होगी। इसी तरह राज्य एवं केंन्द्र में जनता द्वारा निर्वाचित सरकार द्वितीय (secondary) एवं तृतीय (tertiary) स्तर की सरकार होगी और संशोधित संविधान में दिए हुए विषय क्षेत्रों में प्रभुत्व सम्पन्न होगी। इन तीनों स्तरों की सरकारों का आपसी सम्बंध संविधान में इस ढंग से निर्धारित होगा कि विभिन्न स्तरीय स्वायत्तता और देश की अखंडता दोनों अक्षुण्ण रहे। फिर, नागरिक जीवन के लिए कुछ ऐसे

महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हो सकते है, यथा शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, जिनका प्रबंधन और प्रशासन साधारण प्रशासन से भिन्न रखना वांछनीय हो, उनके लिए सम्बद्ध जनता की भगीदारी और स्वायत्तता के आधार पर शासकीय या प्रशासनिक व्यवस्था हो सकती है।

भविष्य दृष्टि (Vision)

ये दो बातें, सत्ता का सेवात्मक स्वरूप और उल्लिखित विकेन्द्रीकरण, शासन तंत्र के परिवर्त्तन की मुख्य बिन्दुएं होंगी। इनसे निकलने वाले परिवर्त्तन के बहुत से अन्य तत्त्व या तो स्वत: आ जाएंगे या उन्हें समावेश करना होगा। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में देश की दशा गुणात्मक रूप से भिन्न होगी । भ्रष्टाचार और घोटालों का बाजार खत्म होगा। वोट बैंक की राजनीति समाप्त होगी। फलस्वरूप जातिवाद और सम्प्रदायवाद जो सिर्फ वोट के लिए उभारा जाता रहा है, खत्म होगा। राजनीति में अवांछित और अयोग्य तत्त्वों का आकर्षण और प्रवेश बहुत ही सीमित हो जायेगा। विकास की गति कई गुणा तीव्र हो जायेगी क्योंकि इसमें विकास की धारा दिल्ली और पटना से चलकर गाँव की ओर नहीं बहेगी। यह धारा हर गॉव और शहर में ही प्रस्फुटित होगी। फिर, तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी का वह बयान कि गाँव के विकास कार्य के लिए दिल्ली से भेजा हुआ एक रूपया गाँव तक सिर्फ पंद्रह पैसा ही पहुँचता है। और यदि हम यह आकलन करें कि जनता विभिन्न रूपों में जितना पैसा सरकार को विकास के लिए देती है उसका आधा ही सरकारी कोष में पहुँचता है, तो जनता अपनी मेहनत से कमाए धन का जो हिस्सा विभिन्न करों के रूप में विकास के लिए सरकार को देती है, अभी के शासन तंत्र में उसका 7½ प्रतिशत ही वास्तविक विकास में लगता है। इसका 92½ प्रतिशत भ्रष्टाचार, धोटाला, काला बाजारी और इस बोझिल और अपेक्षाकृत महँगे शासन तंत्र को कायम रखने में लग जाता है और वही देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विकृतियों को जन्म और पोषण देता है। परिवर्त्तित शासन तंत्र में विकास की धारा ही बदल जायेगी और विकास के लिए उसके द्वारा दिए गये पैसे का उपयोग 7½ प्रतिशत से बढ़कर 90 प्रतिशत हो जायेगी जो विकास की गति को 13-14 गुना बढ़ा देगी।

परिवर्त्तित शासन तंत्र में, जब जनता ही शासन की मुख्य धारा में आ जायेगी, देश में नक्सलवाद, अलगाववाद और insurgency का आधार ही खत्म हो जायेगा और उसमें ऐसी समस्याएं एवं गतिविधियां पनप ही नहीं सकतीं। इसी तरह, परिवर्त्तित शासन तंत्र में जहाँ ग्राम सरकार या नगर सरकार ही सरकार की प्रथम (Primary) महत्त्वपूर्ण इकाई होगी, राज्यों को विखंडित कर नए राज्यों के गठन के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में जो आंदोलन चल रहे हैं, वे भी आधारहीन हो जाएंगे।

हमारे देश की बहुत सी समस्यायें जिनसे जन-जीवन त्रस्त है और जिनका समाधान आज के वैज्ञानिक और तकनीकी युग में सम्भव है, उनका भी समाधान इसलिए नहीं हो पा रहा है कि सही विज्ञान और तकनीक प्रयुक्त नहीं हो पा रहा है, और ऐसा इसलिए हो रहा है कि राजनैतिक निर्णयकर्त्ता का इससे कोई इत्तफाक या प्रतिबद्धता नहीं है, और ऐसा इसलिये कि सत्ता केन्द्रित राजनीति में इसका उतना वजन नहीं है। सत्ता-केन्द्रित और सत्ता-प्रेरित राजनीति में उन्हीं मुद्दाओं का वजन है जिन्हें सतह पर लाकर या उभारकर जन मानस को उद्वेलित किया जा सके और वह उद्वेलन वोट में परिणत हो सके। बहुसंख्यकों की धार्मिक भावनओं को उभारना, अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण, जातीयता और क्षेत्रीयता का भावबोध कराना, भाषायी या अन्य आधारों पर अलग राज्य की स्थापना या रोजमर्रे की जिंदगी प्रभावित करने वाली तात्कालिक आर्थिक स्थिति ऐसे मुद्दे हैं जो वोट और सत्ता की राजनीति के लिए शीध्र फलदायी हैं। सही विज्ञान और तकनीकी को अपनाकर जनता को दु:ख दर्दों से त्राण दिलाने और उनका जीवन खुशहाल करने जैसे मुद्दों की न तो आज के राजनीतिज्ञों में कोई समझ है और न आज की राजनीति में उनका कोई समुचित स्थान है। फलस्वरूप जनता विज्ञान और तकनीकी के इन सम्भावित लाभों से मरहूम है और अनावश्यक रूप से अभिशप्त या निम्न स्तरीय जीवन जीने को मजबूर है। इसका सबसे समीचीन उदाहरण बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाढ़ की साल-दर-साल की त्रासदी है। आधुनिक जल विज्ञान और तकनीकी में इस बाढ़ का प्रभावकारी समाधान कर इसे प्रकृति के वरदान में परिणत करने की स्पष्ट संभावना

और क्षमता है। इसमें नेपाल से अपेक्षित सहयोग न मिलने की बात जो भारत सरकार या बिहार सरकार द्वारा जनता को परोसी जाती रही है वह समझ से नितांत परे है, क्योंकि इसी सहयोग पर ही तो नेपाल की गरीबी हटाने का ही नहीं बल्कि इसे एक समृद्ध देश बनाने का आधार है। लेकिन भारत सरकार या बिहार सरकार की सत्ता केन्द्रित राजनीति में इस वार्षिक त्रासदी की न कोई संवेदना है, न विज्ञान और तकनीक का वह स्थान है, न राजनीतिक इच्छाशक्ति है और न ही सार्थक प्रयास है। फलस्वरूप जिस प्रक्षेत्र में सबसे उपजाऊ भूमि, प्रचुर जल, सालों भर कृषि योग्य जलवायु तथा कृषि संस्कृति सम्पन्न विशाल जनशक्ति स्थित है वहाँ की करोड़ों जनता आजादी के साठ सालों के बाद भी गरीबी और बदहाली की जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त है और रोजी रोटी के लिए पलायन को मजबूर हैं। यह एक विकृत शासन तंत्र में ही संभव है, परिवर्त्तित शासन तंत्र में कदापि नहीं।

मार्गदर्शिका (Road Map)

परिवर्त्तित शासन तंत्र में देश का जो स्वरूप उभरेगा उसकी एक झाँकी ऊपर प्रस्तुत की गयी है। हजारों साल की एक उन्नत सभ्यता और संस्कृति और विभिन्नताओं में एकता की विरासत लिये हुए भारतीय जनता की विशिष्ट प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का जो अवसर परिवर्त्तित शासन तंत्र में प्राप्त होगा उसका लाभ भारत को ही नहीं, विषमता और अशांति से आक्रांत विश्व को भी मिलेगा। यक्ष प्रश्न यह है कि कैसे शासन तंत्र परिवर्त्तन का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ और क्रियान्वित किया जाय। इसके लिए किसी गाँधी का प्रादुर्भाव या प्रतीक्षा तो संभव नहीं। गाँधी जैसे महात्माओं का प्रादुर्भाव तो युग-युग में ही होता है। लेकिन उसका लाभकारी प्रभाव तो उनके अपेक्षाकृत अल्पकालीन जीवन में ही तो सीमित नहीं रह सकता। इनके क्रांतिकारी और ओजस्वी विचारों की प्रासंगिकता और उपयोगिता तो कई पीढ़ियों तक रहेगी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हम उनके जीवन काल से अभी बहुत दूर भी नहीं हुए है। आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं, जिन्होंने गाँधी को देखा होगा, सुना होगा या प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए होंगे। शासन तंत्र परिवर्त्तन के लिए तो उनके जीवन्त विचारों का सम्बल तो

लिया ही जा सकता है। इसमें एक बात ध्यान में रखनी होगी। गाँधी के देहावसान के बाद इन साठ वर्षों में ज्ञान-विज्ञान में, आर्थिक परिस्थितियों में, राजनीतिक, शैक्षणिक, तथा अन्य स्तरों पर विश्व के राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों में और कई अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में बहुत ही परिवर्त्तन हुए हैं। गाँधी के विचारों की जीवन्तता तो इसी में है कि ये इन परिवर्त्तनों से सम्यक् रूप से प्रभावित हो । वे कहते थे कि हमें अपने धर की खिड़कियों को खोलकर रखना चाहिए ताकि बाहर से स्वच्छ हवा मिलती रहे और अन्दर की हवा परिष्कृत होती रहे। लेकिन ये खिड़कियॉ उतनी ही खुली रहें कि बाहर की आँधी अंदर आकर हमे पैरों से न उखाड़ दे। अहिंसा आधारित सत्य की खोज में गाँधी की यात्रा अनवरत थी, कोई आखिरी मंजिल नहीं थी। समय के साथ उनके विचारों का परिवर्द्धन और परिष्करण होता रहता था और वे कहते थे कि कोई उनके विचारों में अपरिवर्त्तनीयता की तलाश न करे, क्योंकि ये विचार जीवन्त है। इस दृष्टिकोण से यह युगपुरूष सदा ही हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा। इस मार्गदर्शन के साथ हमारे इस विकृत और दकियानूस (anachronistic) शासन तंत्र को अभीक्षित रूप से परिवर्त्तित करने का रास्ता आसान रहेगा। बुनियादी सामाजिक परिवर्त्तन के लिए दो विकल्प होते हैं, एक क्रांति (revolution) और दूसरा क्रमिक विकास (evolution)। सदियों से भारत ने परिवर्त्तन के लिए evolution का रास्ता ही अपनाया है और इसी कारण हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति हजारों साल से अक्षुण्ण रही है। और गॉधी ने तो यह दिखा दिया है कि आवश्यकता होने पर इस रास्ते से क्रांतिकारी परिवर्त्तन भी संभव है। सदियों से राजाओं से शासित होने वाला भारत सहजता से गणतंत्र हो गया। यूरोप के कई देश आज भी शासन की इस पुरानी परम्परा से उबरे नहीं है।

इस रास्ते पर चलने में हम अभी तक के परिवर्त्तनों को नकारते नहीं, बल्कि उन्हें निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए सीढ़ी (stepping stone) मानते है। शासन तंत्र के इस अभीप्सित परिवर्त्तन के लिए स्पष्ट हे कि हमें संविधान में आवश्यक परिवर्त्तन करने होंगे। हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसी व्यवस्था रखी है कि संविधान के दायरे में ही संविधान में

महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन किए जा सकते हैं। दूसरे, सरकार गठन के लिए मताधिकार आधारित निर्वाचन की प्रक्रिया भारत में सर्वमान्य हो गयी है। इन दो बुनियादी बातों के आधार पर शासन तंत्र के परिवर्त्तन का रास्ता कठिन नहीं है। इसके लिए सबसे पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कदम होगा भरतीय जनमानस को यह संदेश देना और उसे इसमें शिक्षित करना। भारत के लोगों में औपचारिक शिक्षा के प्रसार की जो अद्यतन स्थिति है उसके मद्देनजर बहुत लोग ऐसा समझ सकते हैं कि ऐसा करना संभव नहीं होगा या कठिन होगा। हजारों साल की सभ्यता और संस्कृति का संस्कार लिए भारत के लोगों के प्रति ऐसा समझना भूल है। इस देश की आम जनता का अच्छे बुरे की समझ बहुत ही ठोस है और इसका परिचय भी कई ऐतिहासिक अवसरों पर जनता ने दिया है। दूर रह रहे किसी राजा-महाराजा के शासन में रहना ही नियति है ऐसा सैकड़ों वर्षो से भारतीयों की समझ और स्वीकार्यता रही है। रामायण और महाभारत युगीन राज्यों की बात छोड़ भी दें तो मगध और मौर्यकाल से तो किसी न किसी राजा के शासन में ही रहना तो इस देश की ऐतिहासिक परम्परा और अनुभव रहा है। ऐसे में लंदन में रह रहे महारानी विक्टोरिया या महाराजा जॉर्ज, जो न्याय प्रिय भी समझे जाते थे, के शासन में रहना भारतीय जनमानस में परम्परा विरूद्ध बात नहीं थी। लेकिन महात्मा गॉधी ने उन्हें जब समझाया कि यह गुलामी हैं, और इसमें रहते देश में शोषण, दरिद्रता, अशिक्षा या अन्य कुस्थितियों का कभी अंत नहीं होगा तो भारतीय जनमानस को इसे समझने में या तदनुसार respond करने में देर नहीं लगी। लोकनायक जयप्रकाश ने भी जब 'शासन परिवर्त्तन नहीं, व्यवस्था परिवर्त्तन' की बात जनता को बतायी तो जनता ने उसकी सार्थकता समझते हुए जमी हुई तत्कालीन सरकार को उखाड़ फेंका और जब उसने देखा कि नई सरकार में वही शासन तंत्र बदस्तूर कायम हैं, अपेक्षित व्यवस्था परिवर्त्तन नहीं आया तो जनता की आशाओं और आकांक्षाओं पर पानी फिर गया और तीन वर्षों के अन्तराल पर अगले ही चुनाव में उसे विदा कर दिया। स्वच्छ छवि, तकनीकी के मसीहा और गंदी राजनीति में स्वच्छ हवा के झोंका के रूप में आने वाले जिस राजीव गाँधी को 1984 के चुनाव में जनता ने सर आँखों पर बिठाया था, पाँच साल बाद अगले ही चुनाव में जनमानस में स्वच्छ छवि से च्युत

होने की वजह से उसी जनता ने उन्हें और उनकी पार्टी को बुरी तरह हरा दिया। अत: ऐसा sturdy common sense सम्पन्न जनता के लिए औपचारिक शिक्षा का होना इस संदर्भ में अर्थहीन है।

देश की सर्वांगीण दुर्दशा के मूल कारण रूप में हमारा शासन तंत्र ही है और इसे परिवर्त्तित कर उपयुक्त सम्यक् शासन तंत्र की स्थापना भारत के सुख और समृद्धि का आधार है, इस संदेश को समझने और मूल्यांकन करने में भारतीय समाज के उस वर्ग को कठिनाई हो सकती है जो या तो इस तंत्र से लाभान्वित है, अत: इस तंत्र में इनका निहित स्वार्थ है या जो इस तंत्र के अंग हैं और ऐसा समझते हैं कि शासन का एक मात्र यही तंत्र है और कोई तंत्र न है न हो सकता है और इस तंत्र की कमियों, विकृतियों और कमजोरियों को उचित सुधार के माध्यम से दूर किया जा सकता है। देर सबेर यह वर्ग भी इस संदेश की सार्थकता को महसूस करेगा लेकिन भारत के बहुत से वर्गों से लिए यह संदेश काली रात के बाद अरूणोदय जैसा लगेगा। भारत का युवा वर्ग जीवन की वास्तविकताओं से रूबरू न होने के कारण अभी भी जिसका आदर्श घूमिल नहीं हुआ है और जो इस शासन तंत्र की विकृतियों को संचार माध्यम से देखते पढ़ते हैं, वे सहजता से इस संदेश को हृदयंगम करेंगे। भारतीय समाज के अवकाश प्राप्त सदस्य जो इस तंत्र से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गुजर चुके हैं, वे अब इससे बाहर आकर इसकी विकृतियों और निरर्थकताओं को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे, फलत: उन्हें भी यह संदेश सार्थक लगेगा। भारतीयों की जीवन अवधि (life expectancy) बढते रहने से यह वर्ग समाज का महत्त्वपर्ण वर्ग होने के साथ साथ बड़ा भी होता जा रहा है। भारत के युवा बुद्धिजीवियों का बढ़ता हुआ वर्ग आज शिक्षा, व्यापार या काम के लिए विदेशों में रह रहा है । इन विदेशों के नागरिक जीवन और शासन तंत्र के परिप्रेक्ष्य में उन्हें अपने देश को देखने-परखने का नया नजरिया मिलता है। इस संदर्भ में इस संदेश की सार्थकता को स्पष्ट समझ सकते हैं और इसे अच्छी पहल मानेगें।

आधुनिक सूचना एवं संचार साधनों यथा रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाइल, इंटरनेट और प्रेस के इस युग में किसी संदेश को जन-जन तक पहुँचाना अपेक्षाकृत आसान है। जिस संदेश को भारत के सुदूर कोनों में पहँचाने के लिए महात्मा गाँधी को महीनों ट्रेन से यात्रा करनी पड़ी थी, आज आधुनिक सूचना एवं संचार के माध्यम से उसे बहुत ही कम समय में भारत के जन-जन तक पहुँचाया जा सकता है।

इस काम को सफलतापूर्वक मुकाम तक पहुँचाने के लिए समुचित संगठन एवं आवश्यक धन की आवश्कता होगी। शासन तंत्र को परिवर्त्तित करने के लिए सांगठनिक तंत्र भी उसी के अनुरूप बनाना होगा। इसमें समझ और सावधानी की आवश्यकता होगी। जहाँ तक आवश्यक धन का प्रश्न है, उसे जन-जन के आर्थिक सहयोग से ही उपलब्ध करना ठीक रहेगा। इस रास्ते से एक तो विशाल जन समुदाय के न्यूनतम आर्थिक सहयोग से भी इस काम के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो जाएगा। दूसरे, इस क्रांतिकारी कार्य में जन-जन की भागीदारी और प्रतिबद्धता सुनिश्चित हो सकेगी। किसी बड़े स्रोत से बड़े धन की अपेक्षा करने से इस कार्य को सही रास्ते पर रखने में कठिनाई आने की संभावना हो सकती है। स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस को चवन्निया सदस्यता रखने में यही उद्देश्य रहा होगा।

तेज रफ्तार से होती जा रही भारत की दुर्दशा के मद्देनजर जनता तक इस संदेश को पहुँचाना और उसे जागृत करना नितान्त आवश्यक एवं urgent है। सदियों से गुलामी की जंजीर में जकड़ी भारत माँ 1947 में इन जंजीरों से मुक्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने सिर्फ इस जंजीर में लगे हुए ताला की चाभी भारतियों के हाथों में सौंप दी। इस चाभी से ताला खोलकर भारत माँ को इन जंजीरों से मुक्त करने के बजाय 1950 के 26 जनवरी को इस ताले को बदल कर नया ताला लगा कर मुक्ति का सिर्फ अहसास कर लिया गया। वह जंजीर बदस्तूर कायम रही। बल्कि समय के साथ इन जंजीरों में जंग लगने से जकड़ के साथ और विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। हमें भारत माँ को वास्तव में जंजीरों से मुक्त कराना है जिससे भारत माँ के शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो सके। विभिन्न रोगों से छुटकारा मिले और अंग

प्रत्यंग पुष्ट हो। भारत में आधी अधूरी और फलत: विकृत स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्ण और स्वस्थ स्वतंत्रता का आविर्भाव करना है। जनगण की संप्रभुता संविधान के पन्नों से नि:सृत होकर जन जीवन में लाना है। और इस सब के लिए शासन तंत्र में तदनरूप परिवर्त्तन लाना है।

इस अभियान और आंदोलन की शुरूआत की जिम्मेदारी वर्त्तमान पीढ़ी को ही है। खासकर इसके वरीय सदस्यों की, जो युग पुरूष गाँधी को स्वतंत्रता आंदोलन के प्रणेता और मार्गदर्शक के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते है। और उनके लिए गाँधी के विचारों की जीवन्तता अभी भी कायम है। आने वाली पीढ़ियों में यदि गाँधी किसी अवतार की तरह पूजनीय हो गए तो संभव है कि उनके विचारों को वास्तविक जीवन के लिए प्रासंगिक या व्यावहारिक न मानकर हम उसे आदर्श के ऊँचे मंच पर बिठाकर अर्वाचीन भारत के लिए उसकी सार्थकता से मुँह मोड़ लें। और इस तरह देश की दुर्दशा के निवारण करने और इसे सम्यक्, बहुआयामी और समृद्धि की ओर ले जाने का एक ऐतिहासिक अवसर खो दें।